International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

रस–ध्वनि विमर्श

अंशु शर्मा
शोध छात्रा
द्राविडियन विश्वविद्यालय
श्रीनिवासवनम् कुप्पम–517425

शोध सार– ध्वनि सिद्धांत के प्रवर्त्तक आर्चाय आनंदवर्धन हुए हैं। वे काव्य के दो अर्थों से प्रेरित हैं– शाब्दिक एवं अन्तर्निहित। इस सिद्धांत के अन्तर्गत शब्द व उसके अर्थ को दो भिन्न तत्व न मानकर शब्द की संक्रिया और उसके बोध को एक ही माना गया है। यहाँ ध्वनि को अनुमान प्रक्रिया के द्वारा नहीं अपितु सांकेतिक अर्थ के रूप में व्यक्त किया गया है। ध्वनि को मुख्यतः दो प्रकारों में विभाजित किया गया है–विवक्षितान्यवाच्य ध्वनि(अभिधामूला) एवं अविवक्षिवाच्य ध्वनि(लक्षणामूला) । अविवक्षितवाच्य फिर दो भागों में विभाजित है– अर्थांतरसम्क्तिऋत एवं अत्यंततिरस्कृत । विवक्षितान्यवाच्य भी आगे दो भागों में विभाजित है– असंलक्ष्यक्रम एवं संलक्ष्यक्रम । वस्तु व अलंकार ध्वनि संलक्ष्यक्रम के अधीन आती हैं एवं रस ध्वनि असंलक्ष्यक्रम के अधीन आती है। यहाँ ध्वनि को काव्य की आत्मा एवं रस को ध्वनि की भी आत्मा मानकर औचित्य को रस का सत्व माना गया है। अतः रसध्वनि को काव्य की यर्थाथ आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। अतएव वह काव्य श्रेष्ठ माना है जिसमें काव्य के सभी घटक सांकेतिक अर्थ या ध्वनि द्वारा रस को प्रकट करते हैं ।

मुख्य शब्द– भक्तवादिन, अनिर्वचनीयतावादिन, अभाववादिन, सांकेतिक, व्यंजना, लक्षणा, सिंद्धात, संक्रिया, पक्षधर्मिता, रस, ध्वनि, अभिधा, विवक्षितान्यवाच्य, अत्यंततिरस्कृत, अर्थांतरणसम्क्तिऋत, संलक्ष्यक्रम, वस्तु, अलंकार, विधि, निषेध, विभाव, अनुभाव, प्रतीयमान, रूप, गुण, सहृदय, अभीष्ट, पक्ष, हेतु, साध्य, औचित्य, आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

आचार्य आनंदवर्धन ने ध्वनि की संकल्पना को सिद्धांत में बदलने का महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न किया। यद्यपि ध्वनि की संकल्पना उनके पूर्वजों के लिए नई नहीं थी परन्तु जब तक उन्होंने इसे सूत्र बद्ध नही किया और नए आयाम नहीं दिए, उससे पहले तक यह विद्वानों के बीच में विवाद का विषय बनी हुई थी। आनंदवर्धन स्वयं ध्वन्यालोक के प्रारम्भ में लिखते हैं :

"काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति बुधैर्यः समाम्नातपूर्वस्तस्याभावं जगदुरपरे भाक्तमाहुस्तमन्ये ।
केचिद् वाचां स्थितमविषये तत्त्वमूचुस्तदीयं तेन बूमः सहृदसमनः प्रीतये तत्स्वरूपम् ।"[1]

"काव्य के आत्मभूत जिस तत्व को विद्वान लोग ध्वनि नाम से कहते आये हैं, कुछ निश्चयपूर्वक इसको काल्पनिक कहेंगे, कुछ इसे तार्किक संकेत के रूप में समझेंगे, कुछ अन्य शब्दों से परे उसके सत्व की बात करेंगे। इसलिए सहृदयों की मन की प्रसन्नता के लिए हम उस(ध्वनि) के स्वरूप का निरूपण करते हैं।"

कला के विद्वान विचारकों के बीच ध्वनि के बारे में केवल तीन दृष्टिकोण प्रचलित थे। अभाववादिन ध्वनि के होने से इंकार करते थे, भक्तवादिन लक्षणा में ध्वनि को सम्मिलित करते थे जबकि अनिर्वचनियतावादिन ध्वनि को अवर्णनीय मानते थे।

अभाववादिन आगे तीन समूहों में विभाजित थे : पहले प्रकार के अभाववादिन के अनुसार कविता शब्द और अर्थ का संयोजन था। कविता में आकर्षण उत्पन्न करने वाले तत्व गुण और अलंकार हैं। यह सिद्धांतकार दृढ़ता पूर्वक ध्वनि के अस्तित्व से इंकार करते थे। दूसरा समूह ध्वनि को इस तर्क के साथ नकारता था कि पहले चर्चा नहीं हुई है अतः इसका कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। सिद्धांतकारों का तीसरा समूह यह मानता था कि अगर ध्वनि ही सुन्दरता का स्त्रोत है तब इसे गुण और अलंकार की संभावना के साथ अवश्य आना चाहिए।

भक्तवादिन मानते थे कि ध्वनि को लक्षणा के साथ मिलाया जा सकता है इसे नया नाम देने की कोई आवश्यकता नहीं है।

अनिर्वचनियतावादिन मानते थे यद्यपि यह सिद्धांतकार ध्वनि के अस्तित्व से इंकार नहीं करते किन्तु वह इसे किसी वर्णन या विश्लेषण का विषय भी नहीं मानते।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

आनंदवर्धन ने इन सभी आपत्तियों का सामना कर ध्वनि की संकल्पना को स्थापित किया। उन्होंने दर्शाया कि ध्वनि अभिधा और लक्षणा से सम्पूर्णतः भिन्न है। यह तीसरे प्रकार का अर्थ है जो इन दोनों की संभावना से परे है और जो पाठकों के हृदय को आनंदित करता है। ध्वनि स्पष्ट करने के लिए आनंदवर्धन कविता के अर्थों के दो स्तरों से प्रेरित हैं : पहला शाब्दिक (वाक्य) और दूसरा अंतर्निहित (प्रतीयमान) है। वह लिखते हैं:

"योऽर्थः सहृदयश्लाघ्यः काव्यात्मेति व्यवस्थितः ।
वाच्यप्रतीयमानाख्यौ तस्य भेदावुभौ स्मृतौ ।।"[2]

"सहृदयों द्वारा प्रशंसित जो अर्थ काव्य के आत्मा रूप में प्रतिष्ठित है उसके वाच्य और प्रतीयमान दो भेद कहे गए हैं।" पहले वाला प्रत्यक्ष अर्थ है और बाद वाला सांकेतिक अर्थ है। प्रत्यक्ष या शाब्दिक अर्थ सांकेतिक अर्थ की नींव है। आनंदवर्धन कहते हैं :

आलोकार्थी यथा दीपशिखायां यत्नवान् जनः ।
तदुपायतया तद्वदर्थे वाच्ये तदादृतः ।।[3]

"जैसे आलोक की इच्छा करने वाला पुरूष उसका उपाय होने के कारण दीपशिखा में यत्न करता है उसी प्रकार व्यंग्यार्थ में आदरवान कवि वाच्यार्थ का उपादान करता है।" कविता में सांकेतिक या अव्यक्त अर्थ वह है जो सराहनीय पाठक के हृदय को या सहृदय को छुए। इसे व्यंग्यार्थ या प्रतीयमानार्थ भी कहते हैं। प्रतीयमान अर्थ औरत की सुंदरता की तरह है। एक औरत की सुन्दरता उसके शरीर के विशिष्ट अंगों से भिन्न होती है। सुन्दरता शरीर के अंगों के जोड़ से कहीं अधिक होती है। इसलिए अंतर्निहित अर्थ सम्पूर्ण कविता पर निर्भर करता है केवल उसके अंगों पर नहीं।

अभिनवगुप्त ध्वनि को अधिक व्यवस्थित ढंग से स्पष्ट करते हैं। वे विस्तार पूर्व कहते हैं :

"तच्छक्तित्रयोपजनितार्थावगमूलजाततत्प्रतिभासपवित्रितप्रतिपत्तृप्रतिभासहायार्थद्योतनशक्तिर्ध्वनन –व्यापार ।"[4]

"यह सांकेतिक शक्ति संकेत करने की शक्ति है ऐसी शक्ति जो प्रथम तीन शक्तियों के द्वारा प्रकट वस्तु की समझ से उत्पन्न होती है और जो प्रकटीकरण के द्वारा तैयार हो चुकी

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

श्रोताओं की कल्पना के समय सहायता करती है। यह सांकेतिक शक्ति, यह संकेतिक गतिविधि उन तीनों गतिविधियों को धुधँला कर देती है जो गतिमान रहती हैं और कविता की वास्तविक आत्मा है।"

अभिनवगुप्त की संकेत की संकल्पना निर्विरोध नहीं रही। महिमभट्ट अपने ग्रन्थ 'व्यक्तिविवेक' में ध्वनि सिद्धांत की आलोचना इस विचार से करते हैं कि सांकेतिक अर्थ या व्यंजना अनुमान की प्रक्रिया द्वारा व्यक्त हो सकती है। अनुमान के द्वारा सांकेतिक अर्थ को उचित रूप से समझाया जा सकता है।

"भ्रम धार्मिक विश्रब्धः स शनुकोऽद्य मारितस्तेन ।
गोदानदीकच्छकुंजवासिना दृप्तसिंहेन ।।"[5]

"पण्डितजी महाराज! गोदावरी नदी के किनारे कुएँ में रहने वाले मदमत्त सिंह ने आज उस कुत्ते को मार डाला है, अब आप निश्चिन्त हो कर घूमिए।"

इस उदाहरण में, पक्ष गोदावरी नदी का तट है, हेतु शेर है और साध्य घूमने से निषेध है। इसलिए लड़की का उद्देश्य अर्थात् 'उस व्यक्ति को उस स्थान पर घूमने से रोकना' ध्वनि के बजाय अनुमान की प्रक्रिया से पूरा होता है।

ध्वनि सम्प्रदाय के समर्थक इन अनुमानवादियों के तर्क का उत्तर देते हैं। जब हम यह कहते हैं कि 'भय के स्थानों से दूर रहो' तो कारण या हेतु एक स्थान पर पक्का नहीं होता परन्तु कई स्थानों पर होता है और इसलिए यहाँ पर सव्यभिचार हेतु या विसंगत कारण दोष उत्पन्न होता है। सव्यभिचार हेतु या विसंगत कारण का शाब्दिक अर्थ है वो हेतु जो लिंग (धुंआ) और साध्य (आग) के सहगामी में संदेह उत्पन्न करे।

अनुमान प्रक्रिया में "पक्षधर्मिता का निर्धारण सबसे महत्त्वपूर्ण चीज़ है जो मोटे तौर पर पक्ष पर हेतु की उपस्थिति से स्पष्ट हो सकता है। लिंग या हेतु अनुमान निर्मित करने वाले विषय (पक्ष) में वास्तविक रूप से होने चाहिए अर्थात जिसमें साध्य की उपस्थिति हो। उदाहरण के अनुसार, अनुमान करना कि वहाँ चोटी पर आग है, लिंग अर्थात् धुएँ की चोटी पर वास्तविक रूप में उपस्थिति अवश्य ही ज्ञात होनी चाहिए। अगर नहीं तो अनुमान संभव नहीं होगा।"[6] धुंआ स्वयं पक्षधर्म के रूप में समझा जाता है यद्यपि वहाँ पर्वत पर पेड़ और

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

पत्थर जैसी अन्य वस्तुएँ भी होती हैं परन्तु वह सभी पक्षधर्म के रूप में नहीं समझी जातीं क्योंकि विशेष स्थिति में धुंआ ही आग के अनुमान की ओर ले जाता है। जैसा कि पर्वत पर सारी वस्तुएँ पक्षधर्म नहीं होती उसी तरह संसार के सारे धुएँ पक्षधर्म नहीं होते। केवल पर्वत पर विशेष धुंआ ही पक्षधर्म है। आग और धुएँ के अटूट सम्बन्ध के बारे में हमारा सारा पूर्व ज्ञान किसी काम का नहीं होगा अगर हम पर्वत पर धुएँ को अनुभव नहीं करते। अनुमान की प्रक्रिया केवल तभी संभव है जब पक्ष के धर्म के रूप में धुएँ का बोध हो।

यह निश्चित नहीं है कि वहाँ नदी के तट पर शेर है चूँकि अजनबी ने शेर होने की जानकारी दी है। अतः अनुमान ध्वनि का तार्किक विकल्प नहीं है। अभिनवगुप्त का मानना है कि शब्द और उसका अर्थ दो भिन्न तत्व नहीं हैं। जब हम कहते हैं कि सांकेतिक अर्थ व्यंजना मौखिक संक्रिया (शब्दव्यापारविशयत्वम्)[7] का विषय है। यहाँ मौखिक संक्रिया की दो भिन्न प्रक्रिया नहीं होती जैसे कि पहले शब्द की संक्रिया फिर उसका बोध। अभिनवगुप्त मानते हैं कि शब्द की संक्रिया और उसका बोध एक ही है और समान है। इसलिए यह अनुमान का विषय नहीं हो सकता। ध्वनि की कल्पना अनुमान की तरह नहीं होती। यह प्रकृति में असाधारण (लोकोत्तर) होती है अभिनवगुप्त लिखते हैं :

"यस्त्वलौकिकचमत्कारात्मा रसास्वादः काव्यगतविभावादिचर्वणाप्राणो नासौ
स्मरणानुमानादिसाम्येन खिलीकारपात्रीकर्तव्यः ।"[8]

"रस का स्वाद अलौकिक आनंद है। यह विभाव आदि की सुगन्ध से बना है जो कविता में मिलती है और जिसे स्मरण और अनुमान या इसके जैसे निम्न स्तरों पर नहीं होना चाहिए।" रस प्रकृति में अलौकिक है क्योंकि न तो यह संज्ञेय और न ही उत्पाद्य होता है।

"रसोऽयमलौकिकः।
येन ललितपरूषानुप्रासस्यार्थाभिधानानुपयोगिनोऽपि रसं प्रति व्यंजकत्वम् ।"[9]

"....रस अलौकिक है अर्थात् यह कोमल और कठोर अनुप्रास है यद्यपि यह अर्थ पर कोई प्रभाव नही डालता व्यंजक रस हो सकते हैं।"

अब हम ध्वनि की प्रकृति को समझेंगे। आनंदवर्धन ने इसे ऐसे स्पष्ट किया है :

"यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ ।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।।"[10]

"जिसमें परम्परागत अर्थ स्वयं को गौण बना दे या परम्परागत शब्द अपने अर्थ को गौण कर दे और अभीष्ट और अंतर्निहित अर्थ का संकेत दे ऐसी कविता को विद्वानों ने ध्वनि या व्यंजक कविता के रूप में निर्दिष्ट किया है।"

ध्वनि को मौटे तौर पर दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है– विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि और अविवक्षितवाच्य ध्वनि। पहले वाला मुख्य अर्थ पर आधारित है और अभिधामूला ध्वनि कहलाता है और बाद वाला संकेत पर आधारित है जो लक्षणामूला ध्वनि कहलाता है।

अभिनवगुप्त अविवक्षित वाच्य ध्वनि को ऐसे स्पष्ट करते हैं :

"वाच्येऽर्थे तु ध्वनौ वाच्यशब्देन स्वात्मा तेनाविवक्षितोऽप्रधानीकृतः स्वात्मा
येनेत्यविवक्षितवाच्योव्यंजकोऽर्थः ।"[11]

"अविवक्षितवाच्य ध्वनि : इस प्रकार की ध्वनि (अर्थात वाच्य, शाब्दिक अर्थ) जिसके द्वारा शाब्दिक अर्थ स्वयं अभीष्ट नहीं होता अर्थात् प्रबल होने की इच्छा नहीं होती" अविवक्षितवाच्य ध्वनि जहाँ शाब्दिक अर्थ दबा हुआ होता है।

उदाहरण के लिए :

"सुवर्णपुष्पां पृथ्वीं चिन्वन्ति पुरूषारत्रयः
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्"[12]

"पृथ्वी रूपी लता के सुर्वण रूपी
पुष्पों का चयन तीन ही पुरूष करते हैं–
शूर, विद्वान और जो सेवा करना जानता है।"

ऊपर के उदाहरण में, शाब्दिक अर्थ है कि तीन प्रकार के व्यक्ति धरती से सोने के फूल प्राप्त करेंगे। यह स्पष्टतः असम्भव है क्योंकि धरती सोने के फूल पैदा नहीं करती। इसलिए यह उदाहरण प्राथमिक अर्थ के द्वारा समझा नहीं जा सकता। द्वितीय प्रयोग या लक्षणा इस उदाहरण को अर्थ प्रदान करती है। कवि का उद्देश्य योद्धा, ज्ञानी व्यक्ति और

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

जो दूसरों की सेवा करता है उसकी प्रशंसा करना है। प्रत्यक्ष प्रशंसा करने के बजाय वह तीन प्रकार के व्यक्तियों के श्रेष्ठ गुणों की ओर संकेत (व्यंजना) करने के लिए द्वितीय अर्थ का प्रयोग करता है।

अविवक्षितवाच्य ध्वनि आगे दो भागों में विभाजित है : अर्थातंरसम्क्तिऋत और अत्यंततिरस्कृत। अर्थातंरसम्क्तिऋत में शब्दों के अर्थ अन्य शब्दों में पूर्ण परिवर्तित न हो कर आंशिक रूप से होते हैं।

उदाहरण के लिए :

"स्निग्धश्यामलकान्तिलिप्तवियतो वेल्लद्बलाकाघनाः।
वाताः शीकरिणः पयोदसुह्रदामानन्दकेकाः कलाः।।
कामं सन्तु दृढं कठोरह्रदयो रामोऽस्मि सर्वं सहे।
वैदेही तु कथं भष्यिति ह हा हा देवि धीरा भव ।।"[13]

"स्निग्ध एवं श्याम कान्ति से आकाश
को व्याप्त करने वाले और वकपंक्ति (सारस)
जिनके पास विहार कर रही है ऐसे
सघन मेघ, शीकर(छोटे–छोटे जल करण)
से युक्त समीर और मेघों के मित्र मयूरों
की आनन्द भरी कूकें भी चाहे कितनी ही हों
मैं तो कठोर ह्रदय राम हूँ, सब–कुछ सह लूँगा।
परन्तु वैदेही की क्या दशा होगी?
हाय देवी, धैर्य रखना।"

इस उद्धरण में सुन्दर प्रतिवेश में राम की सीता के लिए उत्कंठा चित्रित है। स्थिति व्यंगात्मक है क्योंकि यहाँ जंगल की सुन्दर पृष्ठभूमि और दुखद परिस्थितियों (राम का स्वयं खोजना) के बीच तुलना है। अपनी प्रिय पत्नी सीता के खोने पर राम के विलाप को दर्शा कर कवि दुःख को ऊँचा कर देता है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

यहाँ, हमने राम को प्रकृति की गोद में देखा। यहाँ शब्द 'राम' उसके शाब्दिक अर्थ मे प्रयोग नहीं हुआ। यह संकेत के लिए है कि असंख्य गुणों वाला व्यक्ति जो बहुत सी पीड़ा और दुःख से गुज़रा है। प्राथमिक अर्थ पूर्णतः अलग नहीं है परन्तु इसे दोबारा सांचे मे डाला गया है। राम मूल अर्थ रखता है परन्तु इस शब्द के साथ बहुत से अन्य अर्थ आकर जुड़ जाते हैं। जिस प्रकार गले के हार मे एक धागे से बहुत से भिन्न मोती जुड़े होते हैं।

अत्यंततिरस्कृतवाच्य ध्वनि तब उत्पन्न होती है जब प्राथमिक अर्थ पूर्ण रूप से दबा होता है। अभिनवगुप्त मानते हैः

"यस्त्वनुपपद्यमान उपायतामात्रेणार्थान्तरप्रतिपत्तिं कृत्वा पलायत इव स तिरस्कृत इति।"[14]

"वह अर्थ जो कि इस संदर्भ मे संभव नहीं हैं और जो केवल अन्य अर्थ (संकेतिक अर्थ) का बोध कराने के लिए ठीक है। इसके बाद वह हट जाता है जैसा वह था। इसे "रद्द करना" कहा जाता है।" अत्यंततिरस्कृतवाच्य में अर्थ पूर्णतः तिरस्कृत होता है। उदाहरण के लिए :

"रविसंक्रान्तसौभाग्यस्तुशारावृतमण्डलः।
निःश्वासान्ध इवादर्शश्चन्द्रमा न प्रकाशते ।।"[15]

"हेमंत में सूर्य के चन्द्रमा के समान
अनुष्ण और आंनददायक हो जाने से जिस
(चन्द्रमा) की शोभा सूर्य मे सङक्रान्त
हो गयी है (सूर्य के प्रकाश को ग्रहण करने वाला)
तुषार से आच्छादित मण्डल वाला चन्द्रमा निश्वास
से मलिन दर्पण के समान प्रकाशित नहीं हो रहा है।"

अंधा वह व्यक्ति होता है जो आँखे रखता है परन्तु दृष्टि नहीं। इसलिए हमने देखा कि 'अंधा' का अर्थ केवल आंशिक संकेत करता है। चूँकि शीशा एक वस्तु है और वह कोई आँख नहीं रखता जब हम उसे अंधा कहते हैं तो अर्थ पूर्णतः दबा (तिरस्कृत) हुआ प्राप्त होता है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

विवक्षितांयपरवाच्य ध्वनि शब्द के प्राथमिक अर्थ पर आधारित होती है और वक्ता के आशय को प्रस्तुत करती है। अभिनवगुप्त इसे ऐसे स्पष्ट करते हैं :

"विवक्षितान्यपरश्चासौ वाच्यश्चेति ।

तत्रार्थः कदाचितनुपपद्यमानत्वादिना निमित्तेनाविवक्षितो भवति ।"[16]

"ऐसा शाब्दिक अर्थ जो किसी अन्य अभीष्ट पर आश्रित है।" इसलिए विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि में वक्ता का अभिप्राय प्रधान होता है। अर्थ केवल संदर्भ से निकलता है और उसकी सुन्दरता की शक्ति के द्वारा हमारी समझ का विस्तार होता है।

"शिखरिणि क्व नु नाम कियचिंर किमभिधानमसावकरोत्तपः।

तरूणि येन तवाधरपाटलं दशति बिम्बफलं शुकशावकः ।।"[17]

"हे सुमुखि ! इस शुकशावक ने
किस पर्वत पर और कितने दिनों तक,
कौन–सा तप किया है जिसके कारण
तुम्हारे अधर के समान रक्त वर्ण बिम्ब
फल को काट(चूमना) रहा है।"

इस उदाहरण में प्राथमिक अर्थ प्रत्यक्ष व्यक्त है छिपा हुआ नही है। विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि में अर्थ तीन शब्दार्थ विज्ञान प्रक्रिया अर्थात् अभिधा, तात्पर्यशक्ति और व्यंजना के द्वारा पहुँचता है। यहाँ लक्षणा का प्रयोग नहीं होता क्योंकि यहाँ प्राथमिक अर्थ में कोई रूकावट नहीं होती। संकेत शाब्दिक अर्थ पर आधारित है।

विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि आगे दो भागों में विभाजित है– असंलक्ष्यक्रम और संलक्ष्यक्रम। जब क्रम प्राथमिक और संकेतिक अर्थ के बीच में व्यक्त होता है तो इसे संलक्ष्यक्रम विवक्षितान्यपरवाच्य ध्वनि कहते हैं। जहाँ क्रम प्राथमिक और संकेतिक अर्थ के बीच में व्यक्त नहीं होता उसे असंलक्ष्यक्रम ध्वनि कहते हैं। वस्तु और अलंकार ध्वनि संलक्ष्यक्रम के अधीन आती है जबकि रस ध्वनि असंलक्ष्यक्रम के अधीन आती है। रस ध्वनि में हम कविता पढ़ते या सुनते हैं तब उसका अर्थ समझते हैं और अन्ततः आनंद प्राप्त करते हैं। यहाँ सांकेतिक अर्थ और शाब्दिक अर्थ के बीच में कोई क्रम नहीं है। संलक्ष्यक्रम में

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

एक स्पष्ट क्रम है। पहले हम छंद को पढ़ते हैं और तब शाब्दिक अर्थ और फिर सांकेतिक अर्थ को समझते हैं।

जब अर्थ सांकेतिक विषय वस्तु के द्वारा प्रकट होता है तो वह वस्तु ध्वनि कहलाती है। वस्तु ध्वनि में विषय के संकेत या विचार प्रधान होते हैं। विषय वस्तु के द्वारा साधारण अर्थ प्रस्तुत होता है जिसकी प्रकृति या तो विधि या निषेध होती है। काफी बार विचार विधि(घनात्मक) के रूप में व्यक्त होता है जबकि वास्तव में अर्थ निषेध(ऋणात्मक) का संकेत करता है। यह दूसरी तरह भी हो सकता है कि विचार निषेध प्रकृति का हो और वह विधि का संकेत करे।

उदाहरण के लिए :

"भ्रम धार्मिक विश्रब्धः स शनुकोऽद्य मारितस्तेन ।
गोदानदीकच्छकुंजवासिना दृप्तसिंहेन ।।"[18]

"पण्डितजी महाराज! गोदावरी नदी के किनारे कुएँ में रहने वाले मदमत्त सिंह ने आज उस कुत्ते को माल डाला है, अब आप निश्चिन्त हो कर घूमिए।"

इन शब्दों का प्रत्यक्ष अर्थ विधि है परन्तु सांकेतिक अर्थ निषेध है। अभिनवगुप्त संकेत की शक्ति पर बल देते हैं और तर्क करते हैं कि इस उदाहरण को न तो मुख्य अर्थ से न ही सांकेतिक अर्थ से समझा जा सकता है। यह न तो लक्षणा है क्योंकि लक्षणा तब उत्पन्न होती है जब प्राथमिक अर्थ में बाधा हो।

अब दूसरी तरह से देखते हैं निम्न स्थिति मे व्यक्त अर्थ निषेध प्रकृति का है और सांकेतिक अर्थ विधि प्रकृति का है। उदाहरण के लिए,

"श्वश्रूरत निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोयकय ।
मम पथिक रात्र्यन्धक शय्याया मम निमंक्ष्यसि ।।"[19]

"हे पथिक! दिन में अच्छी तरह देख लो
यहाँ सास जी सोती हैं और यहाँ मैं सोती हूँ
(रात को) रर्ताधीग्रस्त (होकर) कहीं

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

हमारी खाट पर न गिर पड़ना।"

यहाँ अर्थ निषेध है जबकि सांकेतिक अर्थ विधि है। अगला जहाँ व्यक्त अर्थ की प्रकृति विधि है परन्तु संकेत न तो घनात्मक (विधि) है न ही ऋणात्मक (निषेध) है।

"प्रार्थये तावत्प्रसीद निवतस्व मुखशशिज्योत्स्नाविलुप्ततमोनिवहे ।
अभिसारिकाणां विघ्नं करोष्यन्यासामपि हताशे ।।"[20]

"मैं प्रार्थना करता हूँ मान जाओ, लौट आओ।
अपने मुख चंद्र की ज्योत्सना से गाढे अंधकार
का नाश करके अरी हताशे! तुम अन्य
अभिसारिकाओं(के कार्य) का भी विध्न कर रही हो।"

व्यक्त अर्थ की प्रकृति निषेध है और संकेत न तो घनात्मक है न ही ऋणात्मक है।

"कस्य वा न भवति रोशो दष्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम् ।
सम्रमरपद्माघ्रायिणि वारिअवामे सहसुएट्हिणम् ।।"[21]

"प्रिया के सव्रण अधर को देखकर किसको क्रोध नहीं आता
मना करने पर भी ना मानकर भ्रमर सहित कमल को सूंघने
वाली तू अब उसका फल भोग।"

जब कविता में काव्यात्मक सजावट सांकेतिक हो तो अंलकार ध्वनि कहलाती है। आनंदवर्धन मानते हैं कि अलंकार ध्वनि तब घटित होती है जब कविता में भाव गौण हो जाते हैं और वाक्य का अर्थ प्राथमिक बन जाता है। वह लिखते हैं :

"प्रधानेऽन्यत्र वाक्यार्थे यत्राङन्तु रसादयः ।
काव्ये तस्मिन्नलंकारो रसादिरिति मे मतिः ।।"[22]

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

"परन्तु अगर कविता में वाक्य का मुख्य अर्थ किसी अन्य से सम्बन्धित होता है और यदि भाव इत्यादि केवल इसके सहायक के रूप में आते हैं तब ऐसी कविता मे भाव इत्यादि अलंकार होते हैं।"

तीसरी श्रेणी प्रतीयमान अर्थ जो रस ध्वनि कहलाती है। यह रस ही कविता को प्राण और पाठको को आनंद प्रदान करता है। अभिनवगुप्त कविता में रस को सर्वोच्च महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार यह कविता की आत्मा है। जहाँ आनंदवर्धन मानते हैं कि ध्वनि कविता की आत्मा है। अभिनवगुप्त मानते हैं कि ध्वनि की भी आत्मा रस है। उन्होंने अलंकार और वस्तु ध्वनि के ऊपर रस ध्वनि की सर्वोच्चता दर्शायी है। वह मानते हैं कि रस ध्वनि कविता की यथार्थ आत्मा है। यद्यपि वस्तु ध्वनि और अलंकार ध्वनि नियमित रूप से रस उत्पन्न करते हैं और शाब्दिक अर्थ में उनकी सर्वोच्चता निर्धारित करने के लिए वह कहते हैं कि ध्वनि सामान्य रूप में कविता की आत्मा है। जैसे कृष्णमूर्ति लिखते हैं "ध्वनि कविता का सार तत्व है और 'रस' 'ध्वनि' का सार तत्त्व है।"[23]

रस–ध्वनि तब उदित होती है जब शाब्दिक अर्थ और सांकेतिक अर्थ के बीच का क्रम लुप्त हो जाता है। आनंदवर्धन मानते हैं कि सांकेतिक अर्थ को शाब्दिक अर्थ के साथ ही ग्रहण किया जाता है और इन दोनों के बीच का क्रम 'अविभेद्य' है। वह लिखते हैं :

"रसभावतदाभासतत्प्रशान्त्यादिरक्रमः ।
ध्वनेरात्माङिभावेन भासमानो व्यवस्थितः ।।"[24]

"रस, भाव, तदाभाव और भावशान्ति अक्रम(असंलक्ष्यक्रम) अंगीभाव से प्रतीत होते हुए ध्वनि के आत्मा रूप से स्थिर होते हैं।"

"....रस–ध्वनि एकत्रित रूप में कुछ ओर ही है। यह केवल कविता की (सांकेतिक) प्रक्रिया से सम्बन्धित (गोचर) है। यह कभी शाब्दिक व्यवहार के अधीन नहीं आता और न ही शब्दों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होने की कभी कोशिश करता है। इसके ठीक विपरीत है रस अर्थात इसके पास ऐसी विधा है जो व्यक्तिगत सौन्दर्यात्मक रस (चर्वणा) के द्वारा रसनिय होने में सक्षम है। यह आनंद है जो दीर्घकाल (पराक्) से गहन रूप में जुड़े समुचित

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

अव्यक्त विचारों (वासना) के द्वारा रंग (अनुराग) चुके सहृदयों के कोमल मन मे उत्पन्न होता है। समुचित अर्थात् सुन्दर विभाव और अनुभाव के लिए और सुन्दर फिर से उसके आग्रह के कारण जो कि शब्दों के माध्यम से हृदय (संवाद) में होता है। केवल यही रसध्वनि है और केवल यही शब्दों के सीमित अर्थ में आत्मा (कविता की) है।"[25]

जब कविता में रस प्रमुख तत्त्व होता है केवल तभी वह रसध्वनि कहलाता है। यह महान लेखकों के लेख में मिलता है। एक कवि अपनी सृजनात्मक कल्पना या प्रतिभा के द्वारा रस प्रधान कविता निर्मित करता है।

पहली बार अभिनवगुप्त ने ध्वनि की उन्नता के स्तर के आधार पर कविता का मूल्यांकन किया है। जब कविता में सांकेतिक अर्थ, अभिव्यक्त अर्थ से प्रधान होता है तो वह उत्तम काव्य कहलाता है। जब सांकेतिक अर्थ, अभिव्यक्त अर्थ के परे नहीं जाता तो वह मध्य प्रकार का मध्यमा काव्य या गुणीभूत व्यंग्य काव्य कहलाता है। उनके अनुसार जो कविता संकेत अर्थ से रहित है चित्र काव्य है।

जहाँ सांकेतिक अर्थ प्रधान होता है इस प्रकार की कविता ध्वनि कहलाती है। जहाँ यह गौण है वहाँ गुणीभूतव्यंग्य (गौण संकेत की कविता) है।

साहित्यिक कृति के भाव दो महत्त्वपूर्ण तत्त्वों से बनते हैं : रूप (शब्द) और वस्तु (अर्थ)। अलंकार, गुण और रीति केवल कविता के रूप पर निर्भर करते हैं। बिना विषय के यह प्राण हीन है। हमें कविता में यह ध्यान रखना चाहिए। अभिनवगुप्त मानते हैं कि रूप और विषय का यह मिश्रण केवल ध्वनि के सिद्धांत के द्वारा ही संभव है। वाच्यार्थ या प्राथमिक अर्थ रूप है जबकि व्यंग्यार्थ या सांकेतिक अर्थ विषय है। अभिनवगुप्त के लिए कविता का अलंकरण केवल तब अर्थ रखता है अगर वह कविता के सत्व रस को बढ़ाए। ध्वन्यालोक में विभिन्न जगहों पर आनंदवर्धन द्वारा प्रयुक्त उचित शब्द की अभिनवगुप्त यह दर्शाने के लिए व्याख्या करते हैं कि केवल कविता में अनुरूपता और औचित्य ही ऐसे तत्व है जो रस को बढ़ाकर कविता को श्रेष्ठ रूप अर्थात् रस–ध्वनि प्रदान कर सकते हैं। वह लिखते हैं :

"ललितशब्देन गुणालंकारानुग्रहमाह ।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

डचितशब्देन रसविषयमेवौचित्यं भवतीति दर्शयन् रसध्वनेर्जीवितत्वं सूचयति ।"[26]

"वह आकर्षक शब्द के द्वारा यह सूचित करते हैं कि गुण और अलंकार यह आकर्षण इसमे सम्मिलित करते हैं और उचित शब्द के द्वारा वह इस तथ्य को संकेत रूप में कहते हैं कि रसध्वनि कविता का वास्तविक जीवन है क्योंकि यह ये दर्शाता है कि औचित्य हमेशा रस का ध्यान रखता है।।"

आनंदवर्धन के लिए कविता मे रस उत्पन्न करने के लिए औचित्य एक आवश्यक तत्व है। वह मानते हैं कि केवल यही कारक है जो कविता को नष्ट कर सकता है या उसे प्राण दे सकता है। वह लिखते हैं :

"अनौचित्यादृते नान्यद रसमङस्य कारणम् ।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिपत् परा ।।" [27]

"अनौचित्य के अतिरिक्त रस भंग का और कोई कारण नहीं है। प्रसिद्ध औचित्य का अनुसरण ही रस का परम रहस्य है।"

वह मानते हैं कि अलंकार, गुण और सौन्दर्य के अन्य तत्व बेकार होगे अगर वह औचित्य से सम्पन्न नहीं है। क्षेमेंद्र का सिद्धांत उनके गुरु अभिनवगुप्त के अनुमान पर आधारित है। वह दावा करते हैं कि कविता का मुख्य कार्य रस का निरूपण करना है जो फिर से औचित्य पर आधारित है। इसलिए औचित्य रस का सत्व है। वह लिखते हैं :

"औचित्यं रससिद्धस्य स्थिरं काव्यस्य जीवितम ।"[28]

"औचित्यता रस से सम्पन्न कविता का स्थिर जीवन है।"

अंत में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कविता का न तो रूप के आधार पर न ही विषय के आधार पर विश्लेषण हो सकता है। रूप और विषय दोनों ही महत्त्वपूर्ण है। जहाँ रूप शरीर है वहीं विषय कविता की आत्मा है। इसलिए रूप महत्त्वपूर्ण तो है परन्तु बिना विषय के कविता जीवन्त नही होगी। अभिनवगुप्त अपने दोनों ग्रन्थों 'ध्वन्यांलोक लोचन' और 'अभिनवभारती' में बहुत व्यवस्थित ढंग से यह दर्शाते हैं। उन्होंने अपने रसध्वनि के सिद्धान्त को विकसित किया जिसमे रस ध्वनि का सत्व है और औचित्य रस

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

का सत्व है। कविता का श्रेष्ठ रूप (उत्तम काव्य) वह है जिसमें काव्य के सभी घटक सांकेतिक अर्थ या ध्वनि द्वारा रस को प्रकट करते हैं।

सन्दर्भ सूची

1 ध्वन्यालोक, आनंदवर्धन अनु•—के. कृष्णमूर्ती, कर्नाटक विश्व विद्यालय, धरावार, 1974, 1.1
2 वही, 1.2
3 ध्वन्यालोक, अनु•—आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणी, सम्पादक— डॉ• नगेन्द्र, प्रकाशक—ज्ञानमण्डल लिमिटिड, पृ सं34, सन्त कबीर मार्ग, वाराणसी, 1/9
4 ध्वन्यालोक लोचन, अभिनवगुप्त, अनु•—डेनिअल एच. एच. ऐंगल्स, जे. एम. माशन और एम. वी. पटवर्धन, पृ. 88, हार्वड़ विद्यालय प्रेस, कैमब्रिज़, 1990
5 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डा• रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, पृ सं 53, प्रथम अध्याय, नई दिल्ली, 1973 ।
6 तर्कसंग्रह, अन्नम भट्ट, सम्पादक—यशवंत वासूदेव अंधल्य, पृ सं 233, प्रकाशक—भंडारकर ओरिएन्टल रिर्स्च इंस्टीट्यूट पूणे, 1988
7 ध्वन्यलोक लोचन, अनु•—डा• रामसागर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 361
8 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डेनिअल एच. ए. ऐंगल्स, पृ. 191
9 वही, पृ. 193
10 ध्वन्यालोक, अनु•—के. कृष्णमूर्थी, 1.13
11 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डेनिअल एच. एच. ऐंगल्स, पृ. 174
12 ध्वन्यालोक, अनु•—आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणी, 1/13,पृ सं56
13 वही, 2.1, पृ सं 71
14 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डेनिअल एच. एच. ऐंगल्स, पृ. 203
15 ध्वन्यालोक, अनु•—आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणी, 2.1, पृ सं 73
16 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डेनिअल एच. एच. ऐंगल्स, पृ. 174
17 ध्वन्यालोकः, अनु•—आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणी, 1.3, पृ सं 56
18 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डा• रामसागर त्रिपाठी पृ. सं 53
19 ध्वन्यालोक, अनु•—आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणी, 1.4, पृ सं 15
20 वही, 1.4, पृ सं 16

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

21 वही, 1.4, पृ सं 17
22 वही, 2.5, पृ सं 85
23 ध्वन्यालोक, अनु•—के. कृष्णमूर्ती, पृ सं 31
24 वही, 2.3 ।
25 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डा• रामसागर त्रिपाठी, उद्योत— प्रथम
26 ध्वन्यालोक लोचन, अनु•—डेनिअल एच. एच. ऐंगल्स, पृ. 76
27 ध्वन्यालोक, अनु•—के. कृष्णमूर्ती, पृ .139
28 क्षेमेन्द्र की औचित्य विचार चर्चा, कारक 1,5